उपसंहार –

साहित्य और सिनेमा का बहुत ही गहरा रिश्ता होता है | साहित्यकार समाज की परिस्थितियों के हिसाब से अपने साहित्य की रचना करता है | किसी समाज के देश काल परिस्थिति के बारे में जानना हो तो उस समय के साहित्य को खंगाला जाय तो हम ज्यादा अच्छे से उस समय और परिस्थिति को जान सकते हैं | साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है | आज के समय में सिनेमा को भी एक साहित्य के रूप में हम देख सकते हैं जो कि हमारे समाज को हमारे सामने प्रस्तुत करता है | फिल्म का इतिहास बहुत पुराना नहीं है अभी केवल एक शादी बीता है इसके जन्म को लेकिन आज के समय में सबसे सशक्त माध्यम बनकर उभरा है | सिनेमा को भी समाज का दर्पण कहा जा सकता है लेकिन पूर्ण रूप से नहीं क्योंकि हमारा समाज भी फिल्म के हिसाब से परिवर्तित होता है | यह प्रक्रिया कुछ यूँ चल रही है कि कभी सिनेमा समाज से एक कदम आगे बढ़ता है तो कभी समाज सिनेमा से एक कदम बढ़ जाता है यह बढ़ने की प्रक्रिया अनवरत चल रही है | तभी तो इन सौ सालों में समाज जीतनी तेजी से बदला है उतना तेजी से बदलाव अन्य किसी सदी में देखने को नहीं मिलता है|

हमारे शोध का विषय है “हिंदी सिनेमा में कितने देवदास” | इस विषय को लेने का मेरा केवल एक मात्र उद्देश्य था कि शरतचंद्र द्वारा लिखित उपन्यास देवदास पर सभी भाषाओँ को मिलकर अभी तक मेरी जानकारी में 17 फ़िल्में बन चुकी हैं अट्ठारहवीं फिल्म की शूटिंग चल रही है | मेरा कौतूहल इस बात के लिए था कि ऐसी क्या बात है इस उपन्यास में कि अपने रचना के सौ साल तक यह उसी ढंग से प्रासंगिक है और इस पर फ़िल्में बन रही हैं और दर्शकों को अपनी तरफ खींचती हैं | आगे क्या इस उपन्यास पर और भी फ़िल्में बन सकती है या बनाने की कितनी संभावना है | इन सब बातों ध्यान में रखकर हमने केवल चार फिल्मों का चयन किया जो हिंदी में बनी जिससे कि मै अच्छे से समझ कर विश्लेषण कर सकूं | पहली फिल्म है प्रमथेश चन्द्र बरुआ(1935), दूसरी फिल्म है बिमल रॉय द्वारा निर्देशित(1955), तीसरी फिल्म संजय लीला भंसाली द्वारा निर्देशित(2002) और चौथी फिल्म

अनुराग कश्यप द्वारा(2009)| जब मैंने इन चारों फिल्मों को देखा तो पाया की चारों फ़िल्में एक ही कहानी को लेकर भले ही बनी है लेकिन चारों का अलग कलेवर है, अलग भाषा है, चारों फिल्मों का अपने अपने जगह पर महत्त्व भी है |

उपन्यास की अपनी भाषा होती है और फिल्म की अपनी भाषा होती है | बरुआ साहब देवदास बनाते है तो वे फिल्म में मूल कहानी के साथ उस समय के समाज को दिखाते हैं जो कि अलग अनुभूति देता है | जैसे की वेश्यालय का दृश्य लिखने तो लिख दिया गया लेकिन जब दिखाया जाता है तो उस समय में वेश्यालय जैसे होता था वही दिखाया गया है | बरुआ के चंद्रमुखी का घर अलग ढंग से है बिमल रॉय के चंद्रमुखी का घर अलग है, भंसाली साहब की चंद्रमुखी का घर देखकर तो चंद्रमुखी तवायफ कम रानी ज्यादा लगती है | वहीँ अनुराग की चंद्रमुखी का घर नहीं है दो गलियों एक मोहल्ला है जहाँ कुछ लड़कियाँ कालगर्ल का काम करती है जो कि ग्राहक के साथ होटल में भी चली जाती हैं | यह जो बदलाव है कहानी का बदलाव नहीं बल्कि समाज का बदलाव है समय का बदलाव है मनुष्य के व्यवहार का बदलाव है | इसी तरह देवदास किरदार में भी बदलाव देखने को मिलता है उसका व्यवहार समय के हिसाब से बल जाता है जो अदब जो सामाजिक दबाव सहगल, दिलीप कुमार के अन्दर देखने को मिलता है वह शाहरुख़ खान में नहीं है हालाँकि शाहरुख़ खान खुद मानते हैं कि मै दिलीप कुमार से बेहतर अभिनय नहीं कर सकता इसलिए यह अंतर आया है लेकिन में इसको इस ढंग से देखता हूँ कि आखिर 2002 का देवदास 1955 के देवदास की तरह क्यों करेगा नहीं करेगा | समाज बदला है परिस्थिति बदली है देवदास भी बदलेगा | लन्दन से पढ़कर आने वाला देवदास कलकत्ता में पढ़ने वाले देवदास से अलग होगा ही | अनुराग कश्यप का देवदास एकदम बदल गया | वह सभी बुराइयों से ग्रस्त है वह भारतीय और पश्चिमी संस्कृति के बीच अटका हुआ है | प्यार क्या होता है उसे पता ही नहीं है वह सेक्स को ही प्यार मानता है जिसके लिए उसकी तड़प फिल्म में देखने को मिलती है | उसकी पुरुषवादी सोच उस पर हावी है वह किसी लड़की के साथ जाकर कुछ भी करे लेकिन पारो के बारे में अफवाह सुनकर ही छोड़ देता है पारो से सही गलत जानने की जहमत

भी नहीं उठाता है | यह देवदास का चरित्र परिवर्तन जो इन सौ सालों में हुआ है वह देवदास का परिवर्तन नहीं है बल्कि मनुष्य के व्यवहार का परिवर्तन | अब इसे चाहे हम यह कहें कि मनुष्य का व्यवहार बिगड़ रहा है या अब मनुष्य पूर्ण रूप से स्वतंत्र हो रहा है | इसी तरह एक बदलाव है कि अब धर्मदास समाज से गायब हो गया है क्योंकि आधुनिक समाज में सेवाभाव से बड़ा पैसा हो गया है | चुन्नीलाल जो की दोस्ती का एक प्रतीक है उसकी क्या स्थिति है वह भी देव डी तक आते-आते स्पष्ट हो जाता है | मुझे जो एक बात लगी वह यह कि यदि देवदास को चुन्नी लाल ना मिला होता तो देवदास इस तरह न मरता, लेकिन क्या किया जाय समाज की यही सच्चाई है |

शरतचंद्र के उपन्यास के आधार पर यदि मै कहूं कि कौन सा देवदास सबसे श्रेष्ठ तो मै बिमल रॉय के देवदास को सर्वश्रेष्ठ देवदास मानता हूँ | क्योंकि बिमल रॉय से ज्यादा और किसी निर्देशक ने शरतचंद्र के देवदास की आत्मा को कोई नहीं पकड़ पाया | बरुआ साहब के महत्व को इनकारा नहीं जा सकता है | क्योंकि कम सुविधाओं में और ऐसी विधा में जो अभी विकसित हो रही थी उसमें किसी उपन्यास को हूबहू व्यक्त करना छोटा काम नहीं था |देवदास फिल्म पर समय-समय पर बदलते तकनीक का भी प्रभाव देखने को मिलता है इसको नजरंदाज नहिं किया जा सकता है बरुआ साहब जब फिल्म बना रहे थे और जब अनुराग कश्यप फिल्म बना रहे थे तो दोनों की तकनीकी सुविधाओं में जमीन आसमान का अंतर है | यदि बरुआ साहब को ऐसी सुविधा मिलती तो और भी खूबसूरत फिल्म बनाते हैं |

निष्कर्षतः हम यह कह सकते हैं कि देवदास एक ऐसा उपन्यास है जो कि मनुष्य के किशोरावस्था के असफल प्यार को व्यक्त करता है| किशोरावस्था में बच्चे जिस तरह के अनुभव से गुजरते हैं और माँ बाप का उस पर जो प्रतिक्रिया होती है उसको लेकर देवदास की कहानी को हर फिल्मकार ने अपने ढंग से फिल्म को बनाया है | दरअसल फिल्म नहीं अलग है फिल्म का ट्रीटमेंट अलग-अलग ढंग से हुआ है | फिल्म को देखते हुए अपने को अपने किशोरावस्था में ले जाता है जहाँ

वह पहली बार प्यार किया था | जिसके लिए उसका दिल पहली बार उसका दिल धड़का था उस पारो को महसूस करता है और आनंदित होता है | मै यदि उनकी बात करूँ जिनका दिल प्यार के कभी धड़का है या धड़कता है सबकी अपनी पारो होगी, सबकी अपनी कहानी होगी | क्योंकि 80% लोगों की पारो उसे नहीं ही मिल पाती है | यह बात अलग है कि किसी की पारो को समाज अलग करता है, किसी को उसके माँ-बाप, किसी के भाई, किसी को उनके अन्दर पालने वाला शक, किसी को भौतिक सुख सुविधाएँ वगैरह वगैरह.....| इस तरह मै यह कह सकता हूँ कि देवदास कहानी को लेकर फिल्मे तब तक बनती रहेंगी जब तक समाज बदलता रहेगा और समाज में प्यार होता रहेगा |